**Shikshan Sanshodhan : Journal of Arts, Humanities and Social Sciences** ISSN(o): 2581-6241
Monthly, Peer-Reviewed, Refereed, Indexed Journal Impact Factor: 7.384
Volume - 7, Issue - 10, October - 2024

DOIs:10.2018/SS/202410008 --:-- Research Paper / Article / Review

# महामहोपाध्याय पं. गोपीनाथ कविराज के चिंतन में योग साधना का रहस्य

**[1] डॉ. संदीप ठाकरे *, [2] डॉ.भारत भूषण सिंह**

[1](सहायक आचार्य ) योग विभाग : इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक-484887(मध्यप्रदेश), Email:sandeepganpatrao@gmail.com

[2](सहायक प्राध्यापक) योग विभाग , महाराजा अग्रसेन हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, पौड़ी गढ़वाल उत्तराखंड Email: yogwithbhushan@gmail.com

**शोध सारांश :** साधना' का अर्थ है प्रयत्न करना, उद्योग करना, लगना । साधनाका अर्थ सिद्धि भी है। आत्मानुसन्धानके मार्गमें, अपनी आत्माको परमात्मामें लीनकर 'पूर्णमदः पूर्णमिदम्' की अनुभूतिके पथमें हमारी जो कुछ भी आध्यात्मिक चेष्टाएँ होती हैं उन सबका नाम 'साधना' है। साधारणतः हमारी चेतना बहिर्मुखी होती है। बाहरके विषयोंमें यह मनमाना बेलगाम दौड़ लगाती है, खूब उछल- कुद मचाती है और उसकी प्रत्येक उछल-कूद में हमारी शान्ति और शक्तिका क्षरण होता रहता है और मन क्षुब्ध एवं चञ्चल होता रहता है। मनपर अच्छी तरह लगाम कंसकर और इस प्रकार समग्र बिखरी हुई चेतनाको अपने अंदर समेटकर उसे हृदयमें डुबा देना ही साधनाका गुह्य तत्त्व है। योग्य गुरुके संरक्षणमें साधना करना सर्वथा सुरक्षित एवं निरापद है। परन्तु सधे गुरुके लिये सच्ची खोज होनी चाहिये। एकमात्र समर्पणसे ही पूर्ण शान्ति एवं पूर्ण आनन्दकी अनुभूति होती है। हठयोग और राजयोगकी अपेक्षा समर्पणका मार्ग अधिक कठिन है। समर्पणमें कर्म, भक्ति और ज्ञानका पूर्ण समन्वय है साधना के क्षेत्र में भी गोपीनाथ कविराज समन्वय के समर्थक थे। उनकी अपनी साधना- प्रणाली क्रिया, ज्ञान तथा योग समन्वित थी। विश्व की प्रमुख दार्शनिक धाराओं के मर्मज्ञ होने एक साथ ही शैव, शाक्त, वैष्णव, सूफी, ईसाई, बौद्ध, जैन आदि मतों में उपलब्ध भक्ति साहित्य और उनके निर्माताओं के वे ज्ञाता और प्रशंसक थे। सांस्कृतिक अभेद के विकास को ही वे सारे अध्ययन का लक्ष्य मानते थे। उनके अनुसार मानव जीवन के परमलक्ष्य, विश्वकल्याण की साधना अभेद-स्थापन द्वारा ही संभव है । उनके समन्वय-दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता थी समन्यव-स्थापना की प्रक्रिया में सभी पक्षों के 'स्व' की रक्षा। समन्वय को स्थायित्व प्रदान करने के लिए यह एक अनिवार्य शर्त है। ऐसे सर्वभूत-हितरत महापुरुष के पास पहुँच कर धर्म, संप्रदाय, जाति, देशकाल और भाषा की मानवनिर्मित सारी कृत्रिम सीमाएँ ध्वस्त हो जाती है ।

**शब्द -कुंजी** : योग, साधना , समन्यव,चेतना, समर्पण,अभ्यास, दीक्षा, गुरु,अहंकार, कुण्डलि ।

## 1. प्रस्तावना :

साधना शब्द की उत्पत्ति 'साध्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है 'प्रयत्न करना', 'किसी विशेष सिद्धि की प्राप्ति के लिए प्रयास करना'।[1] जो प्रयत्न करता है, उसे साधक कहते हैं। यदि अभीष्ट फल-सिद्धि की प्राप्ति हुई, तो उसे सिद्ध कहते हैं। जिसे ब्रह्म का पूर्ण ज्ञान है, वह पूर्ण सिद्ध है। साधना के बिना आत्म-साक्षात्कार अथवा ईश्वर-दर्शन सम्भव नहीं है। कोई भी आध्यात्मिक प्रयत्न साधना है। साधना तथा अभ्यास पर्यायवाची शब्द हैं। जो साधना से प्राप्य हो, उसे साध्य कहते हैं। ईश्वर-

साक्षात्कार साध्य अथवा लक्ष्य है। साधारणतः हमारी चेतना बहिर्मुखी होती है। बाहरके विषयोंमें यह मनमाना बेलगाम दौड़ लगाती है, खूब उछल- कुद मचाती है और उसकी प्रत्येक उछल-कूद में हमारी शान्ति और शक्तिका क्षरण होता रहता है और मन क्षुब्ध एवं चञ्चल होता रहता है। मनपर अच्छी तरह लगाम कंसकर और इस प्रकार समग्र बिखरी हुई चेतनाको अपने अंदर समेटकर उसे हृदयमें डुबा देना ही साधनाका गुह्य तत्त्व है। मन, वचन और कर्मकी पवित्रता, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, सात्विक एवं युक्त आहार- विहार, सत्सङ्ग, एकान्तसेवन, आँख, कान, जिव्हा, और उपस्थेन्द्रियका पूर्ण संयम, भगवान् में पूर्ण विश्वास नाम-स्मरण, नम्रता, निरपेक्षता, सद्ग्रन्थ-सेवन, साधु-सेवन, श्रीगुरुका आज्ञापालन यह साधनाके मूल आधार हैं और कोई भी साधक, चाहे जिस शैलीकी उसकी साधना हो, इन तत्त्वोंकी अवहेलना कर नहीं सकता।योग्य गुरुके संरक्षणमें साधना करना सर्वथा सुरक्षित एवं निरापद है।[2]

हठयोगकी कुछ क्रियाएँ- आसन, बन्ध, मुद्रा, प्राणायाम, कुम्भक, धौति, नौलि, त्राटक आदिका अभ्यास किसी योग्य अनुभवी गुरुके अनुशासन एवं तत्त्वावधान में करना चाहिए।[3] हठयोगके आसनोंका अभ्यास एकमात्र नाडीशुद्धि और प्राणशुद्धिके लिये किया जाता है। इससे तुरन्त लाभ यह होता है कि इसके द्वारा साधकका चित्त स्थिर होता है और ध्यान जमता है और शारीरिक क्षोभ अथवा विक्षेप नहीं होने पाता।लोग समझते हैं कि समर्पण एक बहुत आसान चीज है, परन्तु यह आसान है नहीं। समर्पणसे सारा कार्य, सारी साधना, समस्त मनोरथ सफल हो जाते हैं-इसमें कोई भी सन्देह नहीं। मुझे तो एकमात्र समर्पणसे ही पूर्ण शान्ति एवं पूर्ण आनन्दकी अनुभूति हुई है। हठयोग और राजयोगकी अपेक्षा समर्पणका मार्ग अधिक कठिन है। समर्पणमें कर्म, भक्ति और ज्ञानका पूर्ण समन्वय है । हाँ, यह बात अवश्य है कि हमारा यह समर्पण पूर्णतः प्रीतिपूर्वक होना चाहिये। नम्रता, आज्ञापालन, प्रभुकी सेवा और भगवद्भावसे जगत्के जीवोंकी यथाशक्ति सेवा-सहायता करना यह तो है शरीरका समर्पण।[4] प्राणोंका स्तर इतना सुदृढ़ होना चाहिये कि वह साधनाके भारको सँभाल सके, अहङ्कारको भगा सके, इच्छा, वासना, मोह, आसक्ति, ईर्ष्या, राग-द्वेष, लोभ, लालसा, मद, मत्सरसे साधकको अलग-अछूता रख सके। यह पूर्णतः नरम, कोमल, चिकना, मसूण और संवेदनशील होना चाहिये-जिसमें यह भगवत्कृपाके संस्पर्श और प्रभावको बराबर अनुभव करता रहे। किसी भी व्यक्तिगत वासना, किसी भी अहङ्कार- पूर्ण माँग या शर्तके द्वारा समर्पणको कलङ्कित नहीं करना चाहिये। चित्त सर्वथा शुद्ध और निर्मल हो, स्थिर हो, दृढ़ हो और हमारी समस्त इच्छाएँ पुञ्जीभूत होकर भगवान्को पुकार सकें, भगवान्को ही प्राप्त करनेके लिये तड़प उठें ! अहङ्कारको तो एकदम मिटा देना होगा, निःशेष कर देना पड़ेगा।

भारतीय साधना-पद्धति में वैदिक काल से लेकर आज तक गुरु का स्थान महत्त्वपूर्ण माना गया है, कारण कि भगवत्-प्राप्ति सद्गुरु की कृपा के माध्यम से ही होती है, कोई बिरला ही व्यक्ति सीधे भगवान् से बोध प्राप्त करने में समर्थ होता है। यही गुरुकृपा का महाविलास है। इस विज्ञान के अनुसार साधक और योगी में अन्तर है। साधक अपनी ही साधना में प्रवृत्त दूसरे के सुख-दुःख से तटस्थ रहता है, किन्तु योगी का लक्ष्य दूसरों के दुःख में दुःखी और सुख में सुखी होता है, पर को वह अपना रूप मानता है। यहीं साधक का आधार दुर्बल है और योगी का आधार तदपेक्षा प्रबल। साधक स्वयं में तृप्त है, एकाकी काया-विरहित, किन्तु योगी कायायुक्त है और उसकी नित्यसंगिनी है 'शक्ति'। शक्ति के साथ आत्मा का योग ही प्रकृत-योग है। साधक शक्तिहीन होने से शक्ति से युक्त नहीं होता। उपनिषद् कहते हैं- 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'[5] योगी गुरु द्वारा योगी शिष्य एवं साधक दोनों का संस्कार अर्थात् दीक्षा-संस्कार सम्पन्न होता है। साधक का पथ है विवेक-मार्ग, योगी का पथ है योग-मार्ग। साधक किसी योगी की कृपा बिना योग-भूमि में प्रवेश नहीं पाता, किन्तु योगी के लिए साधक-रूप में आत्म-प्रकाश पाना कठिन नहीं। योगी सद्गुरु-कृपा से योगपथ द्वारा लक्ष्य की ओर बहता चला जाता है। लक्ष्य ही उसे महामाया परमा प्रकृति एवं ब्रह्मपर्यन्त लिये चला जाता है। यह अमर सत्ता की गति है। कर्मशील योगी की गति नर-देह में नहीं है। नर-देह में कर्मशील योगी लक्ष्य एवं कर्म दोनों का समन्वय करते हुए संचरण करता है।

'प्रत्येक मनुष्य एक पूर्ण प्राणी है।' किन्तु इसके विपरीत हर मनुष्य अनुभव करता है कि वह अपूर्ण है और इसी कारण असन्तुष्ट भी है। तथापि इस पूर्णता को प्राप्त करने की उसमें एक अदम्य लालसा होती है और जब तक पूर्ण बनने की उसकी यह लालसा सही अर्थ में सन्तुष्ट नहीं होती, वह कभी भी शान्तिपूर्वक नहीं रह सकता । और जैसा कि गीता कहती है - 'शान्ति के बिना सुख आ ही नहीं सकता ।' वस्तुतः मानव पूर्ण है । अतः मानव में अपूर्णता का अनुभव कुछ सीमा तक

बाहरी है। जब तक व्यक्ति बाहरी वस्तुओं के साथ स्वयं को संयुक्त मानता है, वह अपूर्णता की अनुभूति से छुटकारा पा ही नहीं सकता । चाहे वह कितनी भी चेष्टा क्यों न करें, इसी क्रम में वह असन्तुष्ट और दुखी होता रहेगा । इस पृथ्वी पर मानव-जीवन हमें एक सुअवसर के रूप में मिला है, ताकि हम अपनी अन्तर्निहित पूर्णता को महसूस कर सकें तथा मुक्त हो सके । स्वतंत्रता या मुक्ति मानव-जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है । इस सर्वोच्च लक्ष्य की तरफ बढ़ने का प्रथम कदम यह जानना है कि पूर्णता पहले से ही हमारे भीतर है। किसी तरह हमने अपनी मूल प्रकृति को भूला दिया है तथा अपूर्णता के साथ अपनी पहचान बना ली है।अपूर्णता का कारण हिन्दू धर्माचार्य बताते हैं कि अज्ञान ही सारी अपूर्णताओं एवं दुखों का मूल है। अपूर्णता एवं दुखों के बन्धन से बाहर निकलने का एकमात्र रास्ता है - ज्ञान प्राप्त करना या अज्ञानता को दूर भगाना ।[6] चूँकि जीवन की वास्तविक प्रकृति है, अतः हमें उसे कहीं बाहर से नहीं प्राप्त करना ज्ञान वस्तुतः हमारे है, जैसे हम बाहर से कुछ वह जीच प्राप्त करते हैं, जो हमारे पास पहले से नहीं थी । चिर जाज्वल्यमान प्रकाश तो हमारे भीतर ही है। कुछ अपारदर्शी वस्तुओं ने इसे आवृत कर रखा है। हमें सिर्फ इन वस्तुओं को हटा देना है। तब प्रकाश अपनी पूरी शक्ति से चमक उठेगा ।

अपने दिव्य स्वभाव की प्रत्यक्ष अनुभूति हमारी सब समस्याओं का चिरकाल के लिए समाधान कर देती है। यह अनुभव सर्वप्रथम कुछ अत्यावश्यक शर्तों के रूप में कुछ विशिष्ट प्रकार के अनुशासनों का समर्थन करता है। इन्हीं अनुशासनों को साधना कहते हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि दिव्य अनुभूति के लिए ये केवल शर्तें हैं, न कि स्वयं अनुभव हैं। न ही यह कहा जा सकता है कि ये अनुशासन शीघ्र दिव्य अनुभूति की तरफ सीधे अग्रसर करा देते हैं। ये हमें दिव्य अनुभूति के लिए तैयार करते हैं, लेकिन स्वयं अनुभव ईश्वरीय कृपा से ही प्राप्त होता है । यह दिव्य अनुभूति मात्र ईश्वरीय कृपा से ही आती है, अन्य किसी भांति नहीं, तो क्या इन अनुशासनों की उपेक्षा हम नहीं कर सकते ? नियमतः नहीं। क्योंकि बिना किसी प्रारम्भिक योग्यता के दिव्य अनुभूति की प्राप्ति एक अपवाद है, और 'अपवाद' अपवाद है, इसे सामान्य नियम का रूप नहीं दिया जा सकता। ये अनुशासन जिनके पीछे दिव्य अनुभूति आती है, सभी धार्मिक एवं आध्यात्मिक आचार्यों द्वारा स्वीकृत किए गए है-

साधना 'लक्ष्य' या 'साध्य' तक पहुँचने का माध्यम है न कि स्वयं में 'लक्ष्य' या 'साध्य' । हिन्दू-दर्शन एवं धर्म के विविध मार्गों के सभी गुरू आध् यात्मिक अनुभूतियों के लिए साधना की आवश्यकता स्वीकारते हैं। वे सब साधना के कुछ आधारभूत गुणों पर एकमत हैं। यदि इन आधारभूत अनुशासनों का उचित रूप से एवं अति सतर्कतापूर्वक अनुसरण हो, तो वे हमें ईश्वरीय कृपा की प्राप्ति के लिए सुयोग्य पात्रता प्रदान करते हैं । केवल मानव-योनि में ही 'आत्म-तत्व' को अनुभूत किया जा सकता है तथा इस योनि में ही जीव मोक्ष प्राप्त कर सकता है। मानव व्यक्तित्व देह और मन का मिश्रित रूप है। मुक्ति के इच्छुक को अपने शरीर तथा मन को प्रशिक्षित करना होगा और मुक्ति-प्राप्ति हेतु एक सुयोग्य यंत्र बनना होगा ।यह उक्ति कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन निवास करता है साधना के क्षेत्र में भी पूर्णतः लागू होती है। साधना का मूल उद्देश्य है हृदय की शुद्धि । यह उद्देश्य तब तक सिद्ध नहीं हो सकता जब तक शरीर सहयोग नहीं करता । शरीर उस जवान और अनसधे घोड़े की तरह है, जो सदा अपने ऊपर सवारी करनेवाले को लात मारकर गिरा देना चाहता है। एक उत्तम सवार, जो अच्छे उद्देश्य से घोड़े का उपयोग करना चाहता है, धैर्य रखता। शरीर एवं इन्द्रियों का नियंत्रण करना 'दम' है।[7] यह बिना लगामवाली बाह्य इन्द्रियों को लगाम लगा देना और उनको आध्यात्मिक अनुभूति की तरफ मोड़ना है।[8] यह दमन नहीं, बल्कि नियंत्रण है। दम की साधना करते समय ध्यान रखना है कि अति पर न जाएँ तथा शरीर के साथ अत्याचार न करें । शरीर को अनिवार्यतः योग्य एवं स्वस्थ रहना ही चाहिए । दुपरान्त मन को नियंत्रित एवं प्रशिक्षित करनेवाली कुछ कठिन और लम्बे समय तक चलनेवाली साधना का स्थान है। मनोनिग्रह एक पूर्ण विकसित विज्ञान है । हमारे धर्माचार्यों तथा योगियों ने इस विज्ञान हेतु कई-कई जीवन अर्पित कर दिए । विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के लिए विभिन्न प्रकार की पद्धतियाँ खोजी गई हैं । पत्येक नर या नारी ने अपनी कुछ खास मानसिक-शारीरिक बनावट प्राप्त की है । साधना शुरू करने के पूर्व हमें इन विशिष्टताओं पर अवश्य विचार कर लेना चाहिए। व्यक्ति के उचित निरीक्षण के उपरान्त ही किसी के लिए साधना का एक अनुकूल तरीका निर्धारित किया जा सकता है। पहुँचे हुए, अनुभवी गुरु ही

विशेष व्यक्ति के अनुकूल विशेष प्रकार की साधना निर्धारित कर सकते हैं। लेकिन कुछ ऐसी भी साधनाएँ हैं, जो सामान्यतः प्रत्येक उच्चतर जीवन के इच्छुक व्यक्ति के लिए हैं।[9]

गोपीनाथ कविराज का सारा चिन्तन दर्शन की इस दूसरी विधा के साँचे में ढलकर चला है। इससे सहज निष्कर्ष निकलता है कि कविराज की दृष्टि से भारतीय दर्शन जीवन और अस्तित्व के केन्द्रीय अर्थ के ज्ञान की अपेक्षा उसकी उपलब्धि के प्रति समर्पित रहा है और इसलिए उसकी प्रकृति साधनामूलक अधिक रही है।कविराजजी समन्वय को विश्वसंचालन की मूलशक्ति मानते थे, अतः सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा परस्पर विरोधी विचारों के विरोध का परिहार उनके दार्शनिक चिंतन की प्रमुख विशेषता थी। इसलिए उन्होंने कभी किसी मत, धर्म तथा संप्रदाय के प्रवर्तक और उसके सिद्धांत की आलोचना नहीं की। आधुनिक विज्ञान की प्रशंसा और पुराणों की निंदा करना प्रगतिशीलता का प्रतीक माना जाता है। दोनों की सीमाओं से परितः परिचित कविराजजी विज्ञान के असामर्थ्य और पौराणिक अंधविश्वास की वैज्ञानिकता समझाते हुए श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देते थे। उनकी दृढ़ धारणा थी कि भारतीय संस्कृति को अखंड सत्य का पता है इसलिए वह खंडसत्य का भी आदर कर सकती है।[10]

दर्शन की भाँति साधना के क्षेत्र में भी वे समन्वय के समर्थक थे। उनकी अपनी साधना- प्रणाली क्रिया, ज्ञान तथा योग समन्वित थी। विश्व की प्रमुख दार्शनिक धाराओं के मर्मज्ञ होने एक साथ ही शैव, शाक्त, वैष्णव, सूफी, ईसाई, बौद्ध, जैन आदि मतों में उपलब्ध भक्ति साहित्य और उनके निर्माताओं के वे ज्ञाता और प्रशंसक थे। सांस्कृतिक अभेद के विकास को ही वे सारे अध्ययन का लक्ष्य मानते थे। उनके अनुसार मानव जीवन के परमलक्ष्य, विश्वकल्याण की साधना अभेद-स्थापन द्वारा ही संभव थी। उनके समन्वय-दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता थी समन्यव-स्थापना की प्रक्रिया में सभी पक्षों के 'स्व' की रक्षा। समन्वय को स्थायित्व प्रदान करने के लिए यह एक अनिवार्य शर्त है। ऐसे सर्वभूत-हितरत महापुरुष के पास पहुँच कर धर्म, संप्रदाय, जाति, देशकाल और भाषा की मानवनिर्मित सारी कृत्रिम सीमाएँ ध्वस्त हो जाती थीं।

## 2. निष्कर्ष :

मानव जीवन का परम लक्ष्य भगवत प्राप्ति है । इसकी प्राप्ति के लिए साधक अनेक साधना मार्ग का अवलंबन करता है परन्तु साधक का चित्त अनेक वासनाओ से रंगा रहता है । अतः सदाचार प्रतिपालन , शास्त्र की मर्यादा का पालन ,समर्पण ,सर्वदेवों के प्रति सामान श्रद्धा ,निरंतर अभ्यास ,चरित्र की विशुद्धि ,गुरु के प्रति प्रखर श्रद्धा और सैदव विवेक को जागृत रखने से अविद्या के बंधन शिथिल होकर साधक अपने स्वरुप में अवस्थित हो जाता है। यही साधना का प्रधान उद्देश्य है ।

## संदर्भ – सूचि :

[1] सरस्वती स्वामी शिवानन्द : साधना (2000),दिव्य जीवन संघ ऋषिकेश उत्तराखंड,पृ.29
[2] अवस्थी रमेशचन्द्र : तंत्राचार्य गोपीनाथ कविराज और योग -तंत्र -साधना (2014),विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी
[3] सहाय ज्ञानशंकर : हठयोगप्रदीपिका(2021), 2/1,चौखम्बा सुभारती प्रकाशन वाराणसी
[4] कविराज गोपीनाथ: दीक्षा(2014),अनुराग प्रकाशन,वाराणसी, पृ.9
[5] मुण्डकोपनिषद – 3/2
[6] अवस्थी रमेशचन्द्र : तंत्राचार्य गोपीनाथ कविराज और योग -तंत्र -साधना (2014),विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी
[7]विवेक चूडामणि -23, रामकृष्ण मठ नागपुर,महाराष्ट्र
[8] विवेक चूडामणि -22, रामकृष्ण मठ नागपुर,महाराष्ट्र
[9] कविराज गोपीनाथ : श्री साधना(2017), विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी,पृ.44 -45
[10] सिंह, डॉ भगवती प्रसाद : मनीषी की लोकयात्रा(2005) विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, (पृ.9-10)